स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करत जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास–दामोदर २५, वार–कारणोदशायी वृहस्पतिवार, ३० कार्त्तिक, सम्वत् २०२९, १६ नवम्बर १९७२ | संख्या ६

नवम्बर १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्ण स्तोत्राणि

श्रीबहुलाश्वकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८६।३१–३६)

विदेह राज्य (मिथिला) के अधिपति जनक वंश-जात बहुलाश्व नामक राजा एवं मिथिला नगरके श्रुतदेव नामक प्रसिद्ध ब्राह्मणकी भक्तिसे प्रसन्न होकर मुनियोंके साथ द्वारकासे मिथिलाके लिए भगवान श्रीकृष्णने प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचनेपर मिथिला वासियोंने उनका यथेष्ट आदर सत्कार किया। श्रुतदेव एवं बहुलाश्वने हम पर अनुग्रह करनेके लिए ही भगवान श्रीकृष्ण आये हैं, यह जानकर उनके चरणोंमें गिरकर मुनियोंके साथ उन्हें प्रीतिपूर्वक निमन्त्रित किया। राजा बहुलाश्व भगवान श्रीकृष्णको भोजनद्वारा परितृप्त कर उनके पदयुगलकी शुश्रूषा करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—

भवान् हि सर्वभतानामात्मा साक्षी स्वदृग् विभो ।
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

हे विभो ! आप समस्त प्राणियोंको चेतनता प्रदान करनेवाले या परम चेतनस्वरूप परमेश्वर, सभी वस्तुओंके प्रकाशक और स्वप्रकाशस्वरूप हैं । अतएव हमारेद्वारा आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेके कारण आप हमें दर्शन देनेके लिए उपस्थित हुए हैं ॥ ३१ ॥

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ।
यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥

"अपने एकान्त भक्तकी अपेक्षा मुझे अपने भाई अनन्तदेवजी, भार्या लक्ष्मी एवं पुत्र ब्रह्मा भी अधिक प्रिय नहीं हैं"—अपने इस वाक्यकी सत्यताका प्रतिपादन करनेके लिए ही आप हमारे नयनगोचर हुए हैं ॥ ३२ ॥

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवं विद्विसृजेत् पुमान् ।
निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! आप निष्किंचन, शान्तचित्त मुनियोंपर कृपा करते रहते हैं, इस बातको जान लेने पर कौन व्यक्ति आपके पादपद्मोंको छोड़ सकता है ? ॥ ३३ ।

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥

हे देव ! आपने यदुवंशमें अवतीर्ण होकर इस भूलोकमें संसार-दशा पीड़ित मनुष्यों की संसार-निवृत्तिके लिए त्रिलोकीके पापोंका विनाश करनेवाली अपनी यशोराशि विस्तार की है ॥ ३४ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥

हे प्रभो ! हिंसादि प्राकृत धर्मरहित, शान्त, लोक शिक्षाके लिए बदरिकाश्रममें तपस्यापरायण असीम ज्ञानी जो नारायण ऋषि आपसे अभिन्न हैं, ऐसे आप भगवान श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥

दिनानि कतिचिद् भूमन् गृहान् नो निवस द्विजैः ।
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥

हे भूमन ! आप इन मुनियोंके सहित कुछ दिन हमारे गृहमें निवास कर हमारे जनक राजवंशको अपनी पदधूलिद्वारा पवित्र करें ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीबहुलाश्वकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
॥ इति श्रीबहुलाश्वकृत श्रीकृष्णस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षा

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षा ही हमारे प्रचार का विषय है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने निर्विशेषवादका विषय नहीं कहा है। निर्विशेषवादियोंका कहना है कि बहिर्जगतमें रहते समय नाना प्रकारके कार्य करेंगे, पर जगतमें इन सभी कार्योंकी विचित्रता और वैशिष्ट्य नहीं रहेंगे, सब कुछ निर्विशेष हो जायगा। वहाँ कोई विचित्रता नहीं रह सकती। क्योंकि कालकी अधीनतामें ही विचित्रता उत्पन्न होती है, वृद्धि प्राप्त होती है एवं कालके भीतर ही समाप्त हो जाती है। अतएव कालातीत वस्तुको विचित्रताके अधीन करने पर उसे कालाधीन नश्वर वस्तु के रूपमें प्रमाणित करना हुआ।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने ऐसी बात नहीं कही है। उन्होंने भगवत्तामें पुरुषोत्तमवादकी बात कही है। भगवानने केवल शक्तिकी परिचालना कर शक्ति-परिणत जगतमें अनित्य और नित्य दो कार्य-विशेष मात्र स्थापित किये हैं—ऐसा कहकर भगवत्ताको संक्षेप और संकीर्ण करनेकी बात श्रीचैतन्यदेवने नहीं कही है। निर्विशेषवादी जिस प्रकार चेतनताको स्तब्ध कर देनेकी बात कहते हैं, श्रीचैतन्यदेव ने उस प्रकारकी धारणाकी बात नहीं कही है।

विचित्रताकी नित्यता है : उसका नित्यत्व यहाँ आवृत अवस्थामें देखा जा रहा है। उसे कालके अधीन देखे जानेके कारण उसके सम्यक् दर्शनमें बाधा आ गयी है। किन्तु अखण्डकालमें उस-उस विषयकी विचित्रताका नित्य स्वरूप नित्य वर्त्तमान है।

वहिर्जगतके चितास्रोतको अन्तर्जगतके नित्यकालके विषयमें आरोप करनेका नाम ही Anthropomorphism है। इस जगत के संग्रहीत तथ्यको चिज्जगतमें संश्लिष्ट करना—आरोप करने जाना ही Anthropomorphism है। वैसे ही जड़ जगतके पशु-पक्षियोंकी बात चिज्जगतके अप्राकृत अवतार-समूहोंमें आरोप करनेका नाम ही Zoo-morphism है। अचेतनमें यदि चेतनकी बातका आरोप किया जाय, तो वैसा Animism or Animistic चितास्रोत भी प्राकृत सहजियावादकी सृष्टि करता है। जिन्दावास्ता (Zendavesta) पुस्तकमें जो Zoroastrianism धर्मकी बात या लाउजि (Latzes) के ताओइजम (Taoism) अथवा Confucian धर्मकी जो बात है, उसमें बहिर्जगतके विचारसे निर्विशेषवादकी उत्पत्ति होती है। वे सभी केवल मनुष्योंके चितास्रोत से उत्पन्न मनोधर्म मात्र हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने उपास्य-तत्त्वके निर्णय में ऐसे किसी मनोधर्मका आश्रय ग्रहण नहीं किया है। उनका कहना है कि परतत्त्व वस्तु स्वयं प्रकाशित है। स्वयं-रूपके रूप-रूपी, देह-देही, नाम-नामी, गुण-गुणीमें कोई भी भेद नहीं है। यहाँ रूपके परिचयसे रूपीका परिचय प्राप्त करनेकी बात या रूपसे रूपीको स्वतन्त्र करनेकी बात स्वयं-रूपके विषयमें

नहीं है। श्रीचैतन्यदेवका कहना है कि जीव यदि अनावृत केवल-विशुद्ध ज्ञान और निरवच्छिन्न विशुद्ध आनन्दकी बात जान जाँय, तो वे नश्वर आवृत विचारमें प्रवृत्त नहीं हो सकते।

सविशेष परमेश्वरत्व स्वयं-रूपका विचार नहीं करनेसे सम्पूर्ण रूपसे प्रकाशित नहीं होगा। जहाँ स्वयं-रूपका विचार नहीं होता, वहाँ शक्तिद्वारा शक्तिमानका परिचय हो रहा है, रूपके द्वारा रूपीका विचार हो रहा है। वहाँ अखिल कल्याण गुणके द्वारा गुणीका विचार नहीं हो रहा। वह तदेकात्म विचार का विलास मात्र है।

Phenomena (परिदृश्यमान प्रपञ्च) को देखकर उससे हम जो भाव ग्रहण करते हैं, वह परिवर्त्तनशील है। किन्तु स्वयं-रूप — अविकृत मूल-आकर वस्तु है। स्वयं-रूपसे ही सभी रूप प्रकाशित हैं; ये सभी रूप इन्द्रियों द्वारा देखे जानेवाले रूप या काल्पनिक रूपके समान नहीं हैं। जो लोग स्वयं-रूपका विचार नहीं जानते, वे भी प्रायः अधिकांश मात्रामें प्राकृत सहजिया हैं। वे बहिर्जगतके चिता-स्रोतको अधोक्षज भगवानके ऊपर आरोप करते हैं।

पुरुषोत्तम वस्तु स्वयं-रूप न होनेसे अनेक मतवाद उपस्थित होंगे। पुरुषोत्तम वस्तु यदि स्वयं-रूप नहीं है, तब Henotheism (पञ्चोपासना), Kathenotheism, Apotheosism (प्राकृत वस्तुमें ईश्वरकी कल्पना) Pantheism (मायावाद) आदि वाद आकर उपस्थित होंगे। जब तक स्वयंरूप दर्शनकारी मैं और मेरी आत्मगत चित्तवृत्ति आपेक्षिक जागतिक धर्मद्वारा पूर्ण रूपसे ढकी रहेगी, तब तक तदेकात्म-प्रकाश विशेषकी आलोचना करने जाकर कई प्रकारकी अविवेचनीय बातों की आलोचना होगी।

राम, नृसिंहादि अवतारोंकी आलोचनामें स्वयं-रूपकी आलोचना या देववादियों (जड़ में देवत्व आरोप करनेवाले) के विचार स्रोतमें स्वयं-रूपकी कोई आलोचना नहीं है। वहाँ रूप द्वारा रूपीका परिचय हो रहा है, शक्तिद्वारा शक्तिमानका परिचय हो रहा है। किन्तु श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने एकमात्र पुरुषोत्तमवादका ही विचार कहा है। लक्ष्मी के अधीन नारायण नहीं हैं, नारायणके अधीन लक्ष्मी हैं; रुक्मिणी आदिके अधीन कृष्ण नहीं हैं, किन्तु कृष्णके अधीन रुक्मिणी आदि महिषियाँ हैं। जहाँ वार्षभानवी राधिकाके अधीन कृष्ण हैं, वहाँ स्वयंरूप और स्वयंरूपा में कोई भेद नहीं है। वहाँ जो स्वयंरूपका दर्शन है, उसमें स्वयंरूपा वार्षभानवी राधिका कृष्णके अतिरिक्त और किसीकी सेवा नहीं करतीं। पाँच प्रकारके रस पूर्ण भावसे उनके पदाश्रित हैं। उनकी अनुगता ललिता-विशाखादि सेवाके एक-एक अंशमात्र ग्रहण कर सेवा करती हैं। स्वयंरूपा राधिका ही एकमात्र सम्पूर्ण रूपसे उनके सभी व्यूहों द्वारा स्वयंरूपकी सम्पूर्ण और समग्र सेवा करती हैं। चेतनताका उन्मेष होने पर हमारे नित्य स्वरूपके प्राकट्य विषयमें हममें जो मलिनता आकर उपस्थित हुई है, वह मलिनता दूर हो जाती है। इस मलिनताकी निवृत्ति या दूर होनेको ही अनर्थ-निवृत्ति कहते हैं। सेवा सान्मुख्य धर्म द्वारा हमारे नित्य स्वरूपके

प्रकट होने पर अर्थात् अनथ-निवृत्ति होने पर हमारे स्थायी-भावका उदय होता है। स्थायी भावके सहित चार प्रकारकी सामग्रीके मिलने से रसकी उत्पत्ति होती है। अतः स्थायी भाव ही रसका मूल है। आलम्बन और उद्दीपन रसके हेतु हैं। स्थायी भावके परिपक्व होने पर प्रेमका उदय होता है, किन्तु इस प्रेमका विपरीत अर्थ करने पर वही जड़ प्रपञ्चके प्रति हो जाता है। मनोधर्मी सम्प्रदायके व्यक्तियोंने स्वयंरूप तत्त्वको विकृत भावसे ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है। साधारण दार्शनिक व्यक्ति Cognition (बोध), Volition (संकल्प या इच्छा) एवं emotion (आवेग) के विचारसे कलुषित हैं। किन्तु श्रीचैतन्यदेवने ऐसी बात नहीं कही है। उनका कहना है—

निसर्गपिच्छिलस्वान्ते तदभ्यासपरेऽपि च ।
सत्त्वाभासं विनापि स्युः क्वाप्यश्रुपुलकादयः॥

हृदयकी कपटता जो आर्द्रता या भावुकता प्रकट करती है, उस कपटताको निवारण करनेके लिए श्रीमद्भागवतमें इस श्लोककी अवतारणा की गई है—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥

इस कपटतासे उद्धार करनेके लिये ही श्रीगुरुपादपद्मकी आवश्यकता और प्राकट्य है। बहिर्जगतके चिंता-स्रोतमें जो विपत्ति है, उससे उद्धार करनेके लिये ही श्रीगुरुपादपद्म उन सब बातोंकी आलोचना करते हैं। श्रीगुरुपादपद्मकी वाणीमें जब कृष्णनाम-रूप-गुण-परिकरवैशिष्ट्य और लीलाकी आलोचना होती है, तब वास्तवता और कपटताका पार्थक्य मालूम पड़ जाता है, तब नकली वस्तु ग्रहण न कर वास्तविक वस्तुका अनुसंधान होता है एवं उसके लिये यत्न करनेकी चेष्टा उदित होती है।

भाव भक्तिकी अवस्थामें स्थायी भाव रति है। उसके सहित सामग्री मिलनेसे रस की उत्पत्ति होती है। किन्तु यदि सामग्री मिलनेमें बहिर्जगतका चिंतास्रोत आकर उपस्थित होगा, तब आलम्बन विषय और आश्रयकी अनुभूतिमें बाधा उपस्थित होगी और हम नामापराधी हो जायेंगे। तब दो सौ, पाँच सौ बार उछल-कूद करनेसे अथवा आँखोंसे दो मन, दश मन जल निकालनेसे भी वास्तविक वस्तु नहीं प्राप्त होगी—वह केवल कपटता हो जायगी। वह उसी प्रकार कल्पना मात्र हो जायगी, जिस प्रकार शहदसे भरी हुई काँचकी बन्द बोतलके बाहर रहकर मक्खी शहदके आस्वादन प्राप्त होनेकी कल्पना करती है। श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें यह बात सुष्ठुरूपसे कही गई है—

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो
निर्मत्सराणां सतां,
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं
तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किम्वापरैरीश्वरः,
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥

श्रीमद्भागवतके प्रचारके अभावमें या विपरीत अर्थके प्रचारके कारण emotional

school (भावुक सम्प्रदाय) के व्यक्ति जो असुविधा उत्पन्न करते रहे हैं, उससे संसारमें कपटता ही भाव और भङ्गीके नामसे लोगों में भ्रम उत्पादन कर रही है। उस कपटता के साथ कृष्णका कोई सम्बन्ध नहीं है, केवल जीवके जड़ शरीरगत इन्द्रिय-तर्पणका संबन्ध है। बहिर्जगतकी शारीरिक चेष्टासे जो सुख मिलता है, वह अत्यन्त निन्दनीय है। दारुक श्रीकृष्णकी पंखेसे हवा कर रहे थे। उसी समय प्रेमानन्दसे उनके हाथसे पंखा गिर पड़ा। किन्तु नित्य-जातप्रेम दारुकने उस प्रेमानन्दको अच्छा नहीं समझा। वे वैसी आनन्दजनित जड़ताको सेवामें विघ्नकारी समझकर अपने आपको धिक्कार देने लगे। सम्भोगवादी अपने प्रेमानन्दके लिये ही अधिक व्यस्त हैं, किन्तु निष्कपट सेवक भगवानको हवा करके उनको सुख देनेमें व्यस्त हैं। कृष्ण-सेवा करनेसे सुख-सुविधा आकर उपस्थित होती है एवं यदि उससे कृष्णकी सेवामें बाधा उपस्थित होती है, तो वैसे सुखमें प्रमत्त हो जाना ही सहजियावाद है। जो व्यक्ति हरि-सेवा करने जाकर अपनी सुख-सुविधाको ही या अपनी आनन्द-प्राप्तिको ही शान्ति समझते हैं, वे भगवानके सेवक नहीं हैं, बल्कि वे आत्मेन्द्रिय-तर्पणकामी मात्र हैं। वहाँ प्रेमकी कोई बात ही नहीं है। श्रीगुरुपादपद्म इसीलिये शिष्यको अनधिकार चर्चा नहीं करने देते।

'अनर्थ' किसे कहते हैं, 'रस' किसे कहते हैं, उसे न जानकर रसिकताका अभिनय करना—केवल कपटता है। आत्मेन्द्रिय-तर्पण से जो रस भ्रान्ति होती है, उससे प्राकृत सहजिया लोग मोहित होने पर भी वह कृष्ण प्रेम नहीं है। वहाँ विषयानन्द अर्थात् सेव्य वस्तुके आनन्दमें आश्रयानन्द अर्थात् सेवक वस्तुके आनन्दका आदर्श नहीं है।

श्रीधाम-प्रचारिणी सभा श्रीधाम कौनसा है, श्रीधाम किसे कहते हैं—ये सब बातें प्रकाश कर रही है—

सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम् ।
तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवम् ॥

श्रीगौरधाम क्या वस्तु है—यह प्रकाश और प्रचार करना ही श्रीधाम प्रचारिणी सभाका उद्देश्य है। गौरधाम और कृष्णधाम अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण ही गौरलीला करते हैं, श्रीगौराङ्गसुन्दर ही कृष्णलीला करते हैं। गौरधाम स्वयरूपका तद्रूप-वैभव है, भगवान अनन्तके अंशसे उत्पन्न है। गौरसुन्दरकी लीलाशक्ति धामरूपमें परिणत है। श्रीधाम सीमाविशिष्ट वस्तु नहीं है। वर्त्तमान समयमें हमारी अनर्थयुक्त अवस्थामें वह सीमाविशिष्ट मालूम पड़ रहा है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। अनर्थ निवृत्ति होने पर हम सीमायुक्त दर्शनसे निवृत्त होंगे। महाभागवतके वास्तव दर्शनमें वैसा सीमायुक्त भाव नहीं है। जब तक मन है, तभी तक ऐसा दर्शन है—

"हैते भद्राभद्र ज्ञान सब मनोधर्म ।
एइ भाल, एइ मन्द—एइ सब भ्रम ॥"

मन ही अच्छे बुरेका विचार करता है एवं अच्छे-बुरेको बनाता-बिगाड़ता रहता है—

"जे दिन गृहे भजन देखि,
गृहेते गोलोक भाय ।"

जब मैं देखूँगा कि खजूरका पेड़ भजन कर रहा है—नीमका पेड़ भजन कर रहा है—पुरुष भजन कर रहा है—गृह भजन कर रहा है—सभी वस्तुएँ ही भजन कर रही हैं, केवल मैं ही भजन नहीं कर रहा हूँ, तब मेरी गृहव्रत बुद्धि और नहीं रहेगी। 'गृह भजन कर रहा है'—ऐसा दर्शन न होने तक मैं गृह व्रत धर्ममें आबद्ध हूँ।

स्वयंरूप और स्वयंरूपके विचित्र विलास को आधार-स्वरूपा श्रीवार्षभानवी राधिका हैं। उनकी भूमिका वृन्दावन है। जब तक अप्राकृत ज्ञान हमारी आत्मवृत्तिमें उदय होकर वृन्दावनकी अनुभूति नहीं कराता, तब तक हमारा जड़ीय ज्ञान प्रबल रहता है।

"आमेर हृदय मन, मोर मन वृन्दावन,
मने वने एक करि मानि।
ताहे तोमार पद-द्वय, कराह यदि उदय,
तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि।"

दिव्य ज्ञानको बहिर्जगतके चितास्रोतमें रुद्ध करनेकी चेष्टा करने पर Knowing (जानना), Willing (इच्छा करना) and Feeling (अनुभव करना) इस मनोधर्मके वैचित्र्यमें ही हम पड़े रह जायेंगे। काल क्षोभ्य जगतमें वास कर जिस निर्बुद्धितामें हम आबद्ध हुए हैं, वह निर्बुद्धिता गुरु-पादाश्रयके बिना किसी भी प्रकार दूर नहीं हो सकती।

कोई-कोई व्यक्ति भक्तिका स्वरूप न जानकर उसका विकृत अर्थ कर खाने-पीनेके विचारका ही अधिक आदर करते हैं। इसी-लिये मनोधर्मके वशीभूत होकर मानव-जातिने Altruism (जागतिक परोपकार) का विचार लिया है। किन्तु उपकार क्या वस्तु है? 'हमारे बन्धु बान्धवोंका उपकार एवं दूसरोंका अपकार'—ऐसा संकीर्ण उपकार ही क्या परोपकार है? एक व्यक्तिका उपकार करनेसे दूसरे व्यक्तिका अपकार करना ही पड़ेगा। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे गायको न मारनेसे जूता-दान नहीं हो सकता।

मनुष्यके उपकारके विषयमें तारतम्यगत भेद है। अत्यन्त उपकार, अल्प उपकार, आंशिक उपकार—ये तीन भेद हैं। कोई आर्त्त हुए हैं या पीड़ित हुए हैं। उनकी पार्थिव सहायता द्वारा उनके पार्थिव सुख-सुविधाकी व्यवस्था करना जगतकी दृष्टिमें परोपकार माना जाता है। किन्तु भगवान श्रीचैतन्यचन्द्र की दया और परोपकारी वाणी विचार करने से जाना जाता है कि आत्माकी जागृतिमें बाधा देना सबसे अधिक दूसरेका अपकार है। एवं आत्माकी जागृतिके प्रतिबन्धको हटा देना सबसे अधिक दूसरेका उपकार है। बहिर्जगतमें मानवके उपकारका आदर्श—तात्कालिक और अपूर्णावस्थाका उदाहरण है। अपूर्णावस्थाके वैसे उपकार द्वारा जो अमंगल होता है, उसमें आबद्ध होना उचित नहीं है।

उपास्य तत्त्वके विचारमें श्रीकृष्णचैतन्य-देवकी ऐसी शिक्षा है—

आराध्यो भगवान् व्रजेश-
तनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्या काचिदुपासना व्रजवधू-
वर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं
प्रेमा पुमर्थो महान्.

श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं
तत्रादरो नः परः ॥

हम और दूसरी बातें नहीं सुनना चाहते, अन्यान्य बातें संकीर्ण दृष्टिसम्पन्न व्यक्तिकी बातें हैं, किन्तु हमारी पूर्णता हो गई है, ऐसा समझकर अपूर्णतामें पूर्णता का आरोप करना अमंगलका आधार है। कपटता द्वारा मनोवृत्ति स्तब्ध नहीं होती। यदि ऐसा ही होता तो अष्टांग योग आदि द्वारा ही मनकी समाधि हो जाती। किन्तु श्रीमद्भागवतमें त्रिदण्डि भिक्षुका कहना है—

"नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
येन नीतां दशामेतां निर्वेदश्चात्मप्लवः।"

गुरुसेवा रहित होकर जिस अमंगलके पथ में मैं जा रहा हूँ, उसमें लाख-लाख दूसरे देवता मेरे पूज्य हो गये हैं। जब तक सेवाको ही अपना प्रयोजन नहीं समझूँगा, तब तक भगवानका आश्रय या आनुगत्य धर्मकी कोई आवश्यकता नहीं समझ सकूँगा।

आप लोगोंका अधिक समयमें ग्रहण नहीं कर सकता। अनेक व्यक्तियोंकी गाड़ी छूटने का समय हो गया है। अन्यान्य कर्मोंमें जाने का समय हो गया है, मेरी और भी कुछ बातें कहनेको रह गई हैं। बीचमें अनेक बातें बोलनेकी आवश्यकता थी, किन्तु समय थोड़ा है। ये सब बातें जन्म-जन्मान्तरोंमें सुननी होंगी।

हाक्सलिने जिस प्रकार अज्ञेयतावादकी बात कही है,हेगेलने जिस प्रकारका चिंतास्रोत प्रकाशित किया है, निर्विशेषवादी, सन्देहवादी अभिज्ञतावादी आदि व्यक्तियोंने जो चिंतास्रोत प्रकट करनेकी चेष्टा की है, चैतन्यदेवके विचारके सम्बन्धमें आलोचना करने पर उन लोगोंका कहाँ क्या भ्रम एवं गलती है, कहाँ कितना कृष्ण प्रेमका अभाव और व्याघात है वह सब दर्पणमें बिम्बकी तरह दिखाई देता है। श्रीचैतन्य-वाणी कीर्त्तनकारी श्रीगुरुपादपद्म ही ये सभी असत् मत ग्रहण करनेसे रक्षा कर सकते हैं। श्रीगौरसुन्दरने पुनः श्रीगुरुके वेशसे (भक्त-भावसे) ये सभी बातें कही हैं। उनकी बात सुननेसे ही हमारा मंगल है। अन्य व्यक्तियोंकी बात सुननेसे कभी भी अमङ्गल दूर नहीं होगा। इसीलिये गौरकाम, गौरधाम एवं नामकी आलोचना और अनुशीलन करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

रूपानुग बनना ही गौरकाम पूर्ण करना है। पूज्यपाद श्रीजीव गोस्वामी आदिने हमें जो विचार दिखलाया है एवं इतर विचार समूहसे हमारी जो रक्षा की है, उसी विचारके पदाङ्कानुसरण द्वारा गौरधामके स्वरूपकी उपलब्धि होगी। गौरनाम अभिधानिक शब्द मात्र नहीं है। वह गौर स्वरूपसे अभिन्न है। वह स्वयंरूप वस्तु है, पूर्ण चेतनमय है। चेतनमयी जिह्वा द्वारा पूर्ण चेतन नाम ग्रहण करना सम्भव है, 'पूर्ण चेतनमय' शब्दमें 'परमानन्द' अवस्थित है। उसमें आनन्दकी कमी नहीं है। क्षणिक सुख या क्षणिक दुःख की तरह वह नहीं है।

'गौर-नित्यानन्द' कहकर खूब पुकारा, हृदय आर्द्र न होने पर भी बाहरसे कपटता कर आर्द्र (प्रेम) भाव दिखाया, यह सब गौर-नामाश्रय नहीं है। Mental Speculationist (मानसिक कल्पनावादी) होने पर कृष्ण-स्मृति नहीं होगी। चेतनकी वृत्तिमें अनुक्षण कृष्ण-स्मृति आवश्यक है।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्ति
ज्ञानञ्च विज्ञान-विराग-युक्तम् ॥

अतएव कपटता द्वारा अमंगल अवश्य ही होगा। Charity begins at home (उदारता घरसे प्रारम्भ होती है) । स्वयं ही अपनेको अच्छा बनायें, दूसरेके निकट अपने को अच्छा व्यक्ति कहलवानेकी इच्छा—प्रतिष्ठाशा मात्र है। अतः जिससे हमारी कपटता दूर होकर हमारा मंगल हो, वैसे ही गीतों द्वारा वक्तव्य विषय समाप्त करना आवश्यक है।

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

गौर चरनकी आस हमारे

गौर चरनकी आस हमारे ।
दिव्य अनन्त प्रेम-सिन्धू-रस, झरत रहत जिन पदहिं सुखारे ॥
ध्यान धारणा जिन पद सेवा, धरत हिये बिच प्रीतम प्यारे ।
अवगाहन अरु पान निरन्तर, जिन पद-रस हरि करत सदा रे ॥
तिन पद प्रभा भाव रूपहिं धर, गौरहरी हो हरिहि पधारे ।
एक रूपमें दोय प्रकट जग, बाह्य गौर हरि अन्तर कारे ॥
सिद्ध कियो यह प्रगट जगतको, षडभुज रूप सबन दिखलारे ।
बजत बधाई घर-घर माहीं, त्रिभुवन माहीं मंगलचारे ॥
जय जयकार होत दशहूँ दिशि, करैं सुमनकी सुर बरसा रे ।
हृदय नैन प्राणन हरि माहीं, बसत लाडिली रूप अपारे ॥
ताते गौर हरी भये निश्चय, साँवल अन्तर लियों छुपारे ।
'माधुरि' प्रेम-घटा बरसावत, करत कृपा शचि मात दुलारे ॥

प्रश्नोत्तर

(वैष्णव-निंदा)

१–शुद्ध वैष्णव-निंदा कानोंमें पड़ने पर क्या करना चाहिए ? वैष्णव निंदक गुरुजनके प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

"वैध भक्त लोग भगवन्निन्दा और भागवत-निन्दाका अनुमोदन या उसमें सहायता नहीं करेंगे। यदि किसी सभामें ऐसी निन्दा हो रही हो, तब योग्यता होने पर उसी क्षण ही उसका प्रतिवाद करें। जहाँ प्रतिवादका कोई फल न हो, वहाँ बहरे व्यक्ति की तरह रहेंगे एवं उस बातकी ओर ध्यान नहीं देंगे। योग्यता न होने पर उसी क्षण ही उस स्थानका परित्याग करेंगे। यदि गुरुदेवके मुखसे भी ऐसी निन्दा सुनी जाय, तो उनको भी विनीत भावसे वैसा करनेके लिए मना करेंगे। यदि वे सम्पूर्ण रूपसे ही वैष्णव द्वेषी हों, तब उनका परित्याग कर अन्य उपयुक्त पात्रको गुरुके रूपमें ग्रहण करेंगे।"

—चै० शि० ३।४

२–वैष्णव-निंदा सुननेसे क्या असुविधा होती है ?

"साधक कृष्णनिंदा और वैष्णव निन्दा कानोंसे नहीं सुनेंगे। जहाँ ऐसी निंदा हो, वहाँसे चला जाना उचित है। जिनका हृदय दुर्बल है, वे जागतिक व्यक्तियों की अपेक्षासे कृष्ण-वैष्णव निंदा सुनकर धीरे-धीरे भक्तिसे च्युत हो जाते हैं।"

'तत्तत् कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

३–साधु निन्दा सबसे बड़ा अपराध क्यों है ?

"जिन सभी साधुओंने एकमात्र नामका आश्रय ग्रहण किया है एवं समस्त कर्म, धर्म, ज्ञान और योगका भी परित्याग किया है, उनकी निंदा करनेसे महान् अपराध होता है; क्योंकि जो साधु नामका यथार्थ माहात्म्य जगतमें प्रचार करते हैं, उनकी निंदा हरिनाम सहन नहीं कर सकते। नाम-परायण साधुओंकी निंदा परित्याग कर उन्हें ही 'सर्वोत्तम साधु' समझकर उनके संगमें नामकीर्त्तन करनेसे नाम की शीघ्र कृपा होती है।"

—जै० ध० २४वाँ अ०

४–साधु-निंदाका क्या फल होता है ?

"सिद्धान्त जानकर साधु-वैष्णवोंका सम्मान और असाधुका संग अवश्य ही त्याग करेंगे। साधु वैष्णवोंकी निंदा करनेसे हृदयमें कभी भी नाम-तत्त्वका उदय नहीं होगा।"

—'वैष्णव निन्दा' स० तो० ५।५

५–छः प्रकारके वैष्णवापराध क्या-क्या हैं और उनके करनेवालोंको क्या फल मिलता है ?

"जो मूढ़ व्यक्ति वैष्णवोंकी निंदा करता है, वह अपने पितृलोकके सहित महारौरव-नामक नरकमें गिरता है। जो व्यक्ति वैष्णवकी हत्या करें, उनकी निंदा करें, उनसे विद्वेष करें, वैष्णवका अभिनन्दन नहीं करें उनके प्रति क्रोध या ईर्ष्या प्रकाश करें, उस व्यक्तिके लिए ये छः गर्हित आचार ही उसके पतनके कारण होते हैं।"

—'वैष्णव निन्दा', स० तो० ५।२

६–वैष्णव-निन्दा सुननेसे क्या फल होता है ?

"जहाँ भगवानकी या वैष्णवोंकी निन्दा हो रही हो, उस स्थानको जो व्यक्ति त्याग

कर नहीं जाते, वे अपनी समस्त सुकृतिसे च्युत होकर अधोगतिको प्राप्त होते हैं।"

—'वैष्णव-निंदा,' स० तो० ५।२

७–क्या शुद्ध वैष्णवोंकी कोई निन्दा हो सकती है ?

"यदि पापका आदर देखा जाय, तब उसे वैष्णवोंमें गिना नहीं जा सकता। कनिष्ठ वैष्णवकी भी पाप और पुण्यमें रुचि नहीं रहती। जो शुद्ध वैष्णव हो चुके हैं, उनमें कोई दोष ही नहीं है, अतएव उनकी निन्दा भी नहीं हो सकती। जो उनकी निन्दा करेंगे, वे वैष्णवोंके प्रति झूठा अपवाद ही आरोप करेंगे।"

—'वैष्णव निन्दा', स० तो० ५।२

८–दुष्ट लोग वैष्णवोंकी कौन-कौनसी बातोंको लेकर विद्वेषके सहित उनकी निन्दा किया करते हैं ?

"वैष्णवोंकी तीन प्रकारकी बातोंको लेकर दुष्ट लोग विद्वेष पूर्वक आलोचना कर सकते हैं। शुद्ध भक्तिके उदय होनेके पहले उस व्यक्तिके जो सभी दोष थे, वे दुष्ट व्यक्तियोंकी आलोचनाके विषय होते हैं। भक्तिका उदय होनेसे दोष-समूह शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। उनके विनष्ट होनेके अवसर पर जो समय व्यतीत होता है, उस समयमें उनके अवशिष्ट दोषोंके विषयमें दुष्ट लोग दूसरी प्रकारकी आलोचना करते हैं। दुष्ट लोगोंकी तृतीय प्रकारकी आलोचनाका विषय यही है कि विशुद्ध वैष्णवकी दोषोंमें स्पृहा न रहने पर भी कभी-कभी दैवयोगसे कोई निषिद्धाचार उपस्थित होता है। ऐसा दोष वैष्णवोंमें कभी भी स्थायी नहीं होता। फिर भी दुष्ट लोग उस दोषकी आलोचना कर भयंकर वैष्णव-निंदाके दोषसे पतित हो जाते हैं।"

—'वैष्णव-निंदा', स० तो० ५।२

९–वैष्णवोंका चरित्र आलोचना करते समय किस प्रकारकी सतर्कताका अवलम्बन करना चाहिए ?

"वैष्णवोंके भक्ति-उदय होने से पहले जो समस्त दोष थे, उनको किसी अच्छे उद्देश्यके बिना कभी भी आलोचना नहीं करेंगे। पूर्व दोषका क्षय होते-होते बचा हुआ दोष लेकर वैष्णवोंको निंदा नहीं करेंगे।"

—'वैष्णवनिंदा', स० तो० ५।३

१०–सदुद्देश्य के बिना वैष्णवोंका पूर्व दोष, कदाचित होनेवाला दोष और नष्ट प्रायः दोष क्या आलोचना करना चाहिए ?

"निसर्गके समान जो सभी दुराचार भक्ति उत्पन्न होनेके पहलेसे चले आ रहे हैं, वे दिनों-दिन भक्ति बलसे क्षय होकर अल्पकालमें ही नष्ट हो जाते हैं। उनको लेकर सदुद्देश्यके बिना आलोचना करनेसे वैष्णव-निंदाका अपराध होता है। दैवयोगसे होनेवाले दोषको देखकर भी वैष्णवोंकी निन्दा नहीं करेंगे।"

—'वैष्णवनिंदा', स० तो० ५।५

११–वैष्णवोंके कौन-कौनसे दोषकी आलोचना करने पर वैष्णवापराध होता है ?

"दैवयोगसे उत्पन्न दोषकी सत् उद्देश्यके बिना आलोचना करनेसे वैष्णवनिंदाका अपराध होता है। मूल बात यही है कि वैष्णवके प्रति मिथ्यापवाद और पूर्वोक्त तीन प्रकार (पहले उत्पन्न, नष्ट होने वाले अवशिष्ट, और दैवोत्पन्न) के दोषोंको लेकर आलोचना करनेसे नामापराध होता है, उससे नाम-स्फूर्त्ति

नहीं होती। नाम-स्फूर्त्ति नहीं होनेसे वैष्णव नहीं हुआ जा सकता।"

—'वैष्णव निन्दा', स० तो० ५।५

१२–सत् उद्देश्यके बिना क्या परचर्चा करना उचित है ?

"सत उद्देश्यके सहित परदोषकी जो आलोचना की जाय, शास्त्रोंमें उसकी निन्दा नहीं की गई है। सत् उद्देश्य तीन प्रकार का है—जिस व्यक्तिके पापको लेकर आलोचना की जाय, उससे यदि उसका कल्याण उद्दिष्ट होता है, तब वह आलोचना शुभ है। जगतका मंगल करने के लिए यदि पापीके पापकी आलोचना की जाय, तब उसकी भी शुभ कार्यमें गणना की गई है।"

—'वैष्णव-निंदा', स० तो० ५।५

१३–साधु-महिमा जाननेके लिए असाधुका चरित्र आलोचना करनेसे क्या वैष्णव-निन्दा होती है ?

"शिष्यद्वारा गुरुदेवसे वैष्णव निश्चय करनेके लिए प्रार्थना करने पर गुरुदेव शिष्यकी और जगतकी मंगल-कामनाके लिए असदाचारी व्यक्तिको अवैष्णव बतलाकर साधु-वैष्णवका निर्देश करते हैं। साधु-वैष्णवके चरणोंका आश्रय करनेके उद्देश्यसे असत् धर्मध्वजी व्यक्तिका परित्याग करने पर साधु-निन्दा या वैष्णवापराध नहीं होता।"

—'वैष्णव निन्दा', स० तो० ५।५

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

भक्तोंके प्रति आशीर्वाद

भक्तिप्रह्व-विलोकन-प्रणयिनी नीलोत्पल-स्पर्धिनी
ध्यानालम्बनतां समाधिनिरतैर्नीते हितप्राप्तये ।
लावण्यैकमहानिधी रसिकतां राधादृशोस्तन्वती
युष्माकं कुरुतां भवार्तिशमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ॥

हे प्रिय भक्तगण ! श्रीकृष्णके वे नेत्र युगल अथवा श्रीविग्रह तुम्हारे अनादि कालके जन्ममरणरूप सांसारिक दुःखका शमन कर दे जो कि भक्तिके कारण नम्रीभूत सज्जनोंके प्रति कृपा-दृष्टि करनेमें स्नेहयुक्त हैं, और जो नीलकमलके मानका मर्दन करने वाले हैं, और जो समाधिनिरत जनोंने जिनको अपने हितकी प्राप्तिके लिए ध्येय स्थान बना रक्खा है, और सौन्दर्यके जो एकमात्र परमाश्रय हैं, एवं जो श्रीराधिकाजीके दोनों नेत्रोंकी रसिकता का विस्तार कर रहे हैं।

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ–२२)

न तथा ह्याघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया ॥

(भा० ६।१।१६)

हे राजन् ! पापी व्यक्ति कृष्णजन (शुद्ध भक्त) की निरन्तर सेवाद्वारा श्रीकृष्णके प्रति प्राण समर्पणपूर्वक जिस प्रकार पाप-प्रवृत्तिसे शुद्ध हो सकते हैं, वैसे तपस्यादि-द्वारा पवित्रता प्राप्त कर नहीं सकते। भक्तिद्वारा प्रारब्ध पाप भी नष्ट हो जाते हैं। (कपिलदेवसे देवहूतिका कथन)—

(१) **यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्**
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

(भा० ३।३३।६)

हे भगवन् ! जब कुत्तोंके मांस पकानेवाला चण्डाल भी तुम्हारे नामके श्रवण, कीर्त्तन, नमस्कार एवं स्मरण प्रभावसे तुरन्त सोमयज्ञ करनेका अधिकारी होता है, तब मुझ जैसे व्यक्ति जिन्होंने तुम्हारा साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है, उनके भाग्यकी बात क्या कहूँ ?

(२) **अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्**
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥

(भा० ३।३३।७)

अहो ! जिनकी जिह्वा पर तुम्हारे नाम विराजमान हैं, वे चण्डाल कुलमें उत्पन्न होने पर भी तुम्हारे नामोदय होनेके कारण अत्यन्त पूजनीय हैं। क्योंकि पूर्व-पूर्व जन्मोंमें या श्रीनाम-ग्रहणके बीच ही वे (व्यवहारिक ब्राह्मणाचारात्मक) सब प्रकारकी तपस्या, यज्ञ, होम, तीर्थस्नान, सदाचार एवं सारे वेदका अध्ययन कर चुके हैं।

श्रीउद्धवजीसे भी भगवान् नेकहा है—

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्।

(भ० ११।१४।२१)

'मेरे प्रति निष्ठामयी भक्ति चण्डाल कुलमें उत्पन्न व्यक्तिको भी उसके जातिदोषसे पवित्र कर देती है।'

'नाम-कौमुदी' ग्रन्थमें भी कहीं कहीं ऐसा कहा गया है कि उपासकके इच्छानुसार ही भक्ति उनके प्रारब्ध पापको दूर करती हैं।

भक्ति बलसे पाप-वासनाका नाश होता है, यह श्रीमद्भागवतके ६।२।१७ श्लोकमें कहा गया है—

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदान-व्रतादिभिः।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशांघ्रिसेवया ॥

तप, दान एवं व्रतादि पापियोंके सभी पापोंको अवश्य नष्ट कर देते हैं, किन्तु उसके द्वारा अधर्मसे उदित हृदयकी मलिनता या पाप-वासनाके सूक्ष्म संस्कार बिनष्ट नहीं

होते, केवल परमेश्वर श्रीहरिकी पादपद्म-सेवाके प्रभावसे ही वे दूर होते हैं।

पद्म-पुराणमें भी कहा गया है—

अप्रारब्धफलं पापं कूटं बीजं फलोन्मुखम् ।
क्रमेणैव विलीयन्ते विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥

विष्णु भक्तिपरायण व्यक्तियोंका अप्रारब्ध फल, कूट, बीज एवं फलोन्मुख—ये सभी पाप क्रमशः विनष्ट होते हैं। अप्रारब्ध—जो सभी पाप कूटत्वादि कार्यावस्था प्राप्त नहीं हुए। कूट कहनेसे जो सभी पाप बीजत्व-प्राप्त हो उन्मुख हुए हैं एवं बीज कहनेसे जो प्रारब्धत्व प्राप्त होकर उन्मुख हुए हैं, ऐसा जानना होगा। फलोन्मुख कहनेसे प्रारब्धत्व प्राप्त होकर जो उन्मुख हुए हैं, ऐसा जानना होगा। तात्पर्य यही है कि अप्रारब्ध पाप कहनेसे अनादि कृष्णविमुखता रूप पापादि, उसके फलसे कूट पाप, उसके फलसे बीज एवं उसके फलसे प्रारब्ध पाप उत्पन्न होते हैं। भक्तिके द्वारा अविद्याका नाश होता है—

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त-
आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या-
ग्रन्थिं बिभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥

(भा० ४।११।२९)

ध्रुवके प्रति स्वायम्भुव मनुकी उक्ति—परमात्माको अन्वेषण करते समय ही प्रत्यगात्मा (स्वरूप-विग्रह), आनन्देंद्रिय, सर्वशक्तिसे परिपूर्ण भगवान् अनन्तको परा भक्ति विधान कर धीरे-धीरे 'मैं', 'मेरी' ऐसी बुद्धिरूप अविद्याका गाँठ छेदन करनेमें समर्थ हो सकोगे।

पद्म-पुराणमें भी कहा गया है—

कृतानुयात्रा विद्याभिर्हरिभक्तिरनुत्तमा ।
अविद्यां निर्दहत्याशु दावज्वालेव पन्नगीम् ॥

दावाग्निशिखा जिस प्रकार सर्पीको शीघ्र जला डालती है, उसी प्रकार विद्यासमूह द्वारा अत्यन्त उत्तम हरिभक्तिका अनुष्ठान करनेपर यह भक्ति भी अविद्याका शीघ्र ही विनाश करती है।

भक्तिद्वारा सभीकी प्रसन्नता होती है। वृक्षकी जड़में पानीको सींचनेसे उसके शाखादि जिस प्रकार तृप्ति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्रीअच्युतकी पूजा द्वारा सभीकी पूजा हो जाती है।

सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पदावनतमर्भकम् ।
परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥

(भा० ४।९।४६)

विद्वेषिणी विमाता सुरुचि पदतलमें प्रणाम करते हुए बालक ध्रुवको प्रीतिपूर्वक उठाकर आलिंगन कर कहने लगी—"हे वत्स! चिरजीवी हो। जिनके सौहार्द आदि गुणोंसे हरि प्रसन्न होते हैं, जलके नीचे अवस्थानकी तरह सभी प्राणी ही उनके निकट अपने आप अवनत होते हैं।"

पद्म-पुराणमें भी ऐसा कहा गया है—

येनार्चितानि हरिस्तेन तर्पितानि जगन्त्यपि ।
रज्यन्ति जन्तवस्तत्र स्थावरा जंगमा अपि ॥

जिन्होंने श्रीहरिकी अर्चना की है, वे समस्त जगत्को तृप्त कर लिये हैं। स्थावर-जंगम सभी प्राणी ही उनके प्रति अनुरक्त होते हैं।

ज्ञान-वैराग्य आदि सभी सद्गुण भक्तिके ही आश्रित हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुरा ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥
(भा० ५।१८।१२)

भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंमें जिनकी अकिञ्चना भक्ति वर्त्तमान है, धर्म, ज्ञान, वैराग्यादि सभी गुणोंके साथ देवता लोग उनमें नित्य वास करते हैं। प्राकृत विष्णुविमुख मनोरथकी सहायतासे सर्वदा बाहरी जड़ विषयोंके भोगके लिए दौड़नेवाले हरिभक्ति-हीन व्यक्तिमें ऐसे सभी गुणोंकी संभावना कहाँ है ? अर्थात् संभावना नहीं है।

स्वभावसे परम सुख दान कर भक्ति अपने प्रभावसे कर्मादि, ज्ञान एवं साधन साध्यवस्तु सभीको तुच्छ बना देती है।

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥
(भा० ११।१४।१३)

"हे उद्धव ! मुझमें समर्पितात्मा भक्त मुझे त्याग कर दूसरे ब्रह्माका पद, इन्द्रपद, सार्वभौमपद, पातालका प्रभुत्व, अणिमा आदि योगसिद्धियाँ या मोक्ष कुछ भी नहीं चाहते। मैं सभी पुरुषार्थोंसे श्रेष्ठ हूँ, अतएव वे मुझको ही चाहते हैं।"

साक्षात् शुद्ध भक्तिकी निर्गुणता कहने के लिए दूसरे सभी कर्मोंका ही सगुणत्व (माया गुणत्व) प्रतिपादन किया गया है—

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥
(भा० ११।२५।१३)

मेरी प्रीतिके उद्देश्यसे केवलमात्र दास भावसे अनुष्ठित जो नित्यकर्म है, वही सात्त्विक है। फल पाने की आशासे किये गये कर्म राजस एवं हिंसाके उद्देश्यसे किये गये एवं दंभ-मात्सर्यसे प्रेरित होकर किये गये प्राणि-हिंसापूर्ण कार्य तामस हैं।

मेरे प्रति जो कुछ अर्पित हो, वही मदर्पित कर्म है। निष्फल कहनेसे निष्काम, हिंसाप्रायादि अर्थमें दंभ-मात्सर्य आदिके साथ किये गये कर्म।

साक्षात् भक्तिका निर्गुणत्व कहा गया है—

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं
रजो वैकल्पिकन्तु यत् ।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं
मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ।
(भा० ११।२५।२४)

देहादिको छोड़कर आत्मविषयक ज्ञान ही सात्त्विक है, देहादि विकल्पयुक्त ज्ञान ही राजस और बालक एवं मूक व्यक्तियोंके ज्ञानकी तरह प्राकृत ज्ञान ही तामस और परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान ही निर्गुण है। सत्त्वगुण नहीं रहने पर भी भगवत्-ज्ञान वर्त्तमान रह सकता है—

रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।
नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥
(भा० ६।१४।१)

शुद्ध सत्त्वमय देवताओं एवं भोगवासना रहित निर्मलचित्त मुनियोंमें भी प्रायः भगवान् श्रीमुकुन्दके चरणकमलोंमें भक्ति अधिक नहीं होती। इसलिए श्रीशुकदेवजीसे परीक्षित् महाराजसे पूछते हैं—

हे ब्रह्मन् ! रजस्तमः स्वभाववाले वृत्रासुरकी किस प्रकार भगवानके चरणकमलोंमें निश्चला भक्ति हुई ? उसके उत्तरमें वृत्रासुरका पूर्व जन्ममें श्रीनारदादिके

संग द्वारा हरिभक्ति प्राप्त हुई है, ऐसा कहकर केवल सत्त्वगुण ही भक्तिका कारण नहीं है, ऐसा प्रतिपादन किया है।

भगवानके भक्तों या संगियों (वैष्णवों) का संग निमेषकाल मात्र होने पर भी उसके साथ स्वर्ग क्या, मोक्षकी भी तुलना नहीं होती, प्राकृत विषय भोगकी तो बात नहीं है। यह बात श्रीमद्भागवतमें कही गई है--

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

भगवान की कथामें रुचि उत्पन्न करनेका हेतु कहा गया है—

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव-कथारुचिः ।
स्यान्महत् सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥

(भा० १।२।१६)

भगवान्‌की कथा-श्रवणमें इच्छुक एवं श्रद्धालु व्यक्तिको महत्सेवा (हरिभक्तकी सेवा) एवं पुण्यतीर्थ (गंगादि)की सेवाद्वारा हरिकथामें रुचि होती है।

भक्तप्रवर श्रीप्रह्लादके कथनमें भी यह स्पष्ट है--

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि-
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोभिषेकं
निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥

(भा० ७।५।३२)

हिरण्यकशिपुके प्रति प्रह्लादजीने कहा--निष्किंचन, महीयान् परमहंस वैष्णवोंके पदरजमें जब तक इन्द्रियतर्पण परायण व्यक्ति लोग अभिषिक्त नहीं होते, तब तक उनकी मति भगवान् उरुक्रमके पादपद्मोंका स्पर्श नहीं कर सकती। अतएव भगवत् कृपापात्र महान् अर्थात् शुद्धभक्त संग ही भगवत् ज्ञानका कारण है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

भक्तोंकी दीनतापूर्ण प्रार्थना

नामानि प्रणयेन ते सुकृतिनां तन्वन्ति तुण्डोत्सवं
धामानि प्रथयन्ति हन्त जलदश्यामानि नेत्रांजनम् ।
सामानि श्रुतिशष्कुलीं मुरलीकाजातान्यलंकुर्वते
कामानिर्वृतचेतसामिह विभो ! नाशापि नः शोभते ॥

गौर-पार्षदप्रवर परमाराध्यतम श्रील रूप गोस्वामीपाद कहते हैं—हे भगवन् ! आपके मंगलमय समस्त नाम प्रेमके कारण पुण्यात्माओंके मुखका महोत्सव बढ़ाते हैं। आपके विग्रहकी नवीन जलधरके समान श्याम-कान्ति उनके नेत्रोंमें अञ्जनका विस्तार करती है। आपकी मनोहर मुरलीसे उत्पन्न सामध्वनि अर्थात् प्रियवचनयुक्त ध्वनि उनके कानों को अलंकृत कर देती है। प्रभो ! विषयोंकी इच्छासे दुःखित चित्तवाले हमारी तो आशा भी शोभा नहीं देती। इसलिए पूर्वोक्त भक्तोंकी सी दशा कैसे प्राप्त हो सकती है ? शरणागतवत्सल कृपालु प्रभो ! आप ही अहैतुकी अपनी कृपासे हमारा उद्धार कर दीजिए।

(पद्यावलीसे संग्रहीत)

प्रचार-प्रसंग

परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरु-पादपद्मका चतुर्थ-वार्षिक विरहोत्सव

विश्व-व्यापी गौड़ीय मठोंके संस्थापक नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके परमप्रेष्ठ निजजन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-सभापति-आचार्य, श्रीस्वरूप-रूपानुगवर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका चतुर्थ वार्षिक विरह-महोत्सव गत ६ कार्त्तिक, २३ अक्टूबर, सोमवार, कृष्ण-प्रतिपदा तिथिमें समितिके मूल-मठ एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ है। उक्त दिन सभी मठोंमें श्रीगुरुतत्त्वकी महिमा-कीर्त्तन, श्रील आचार्य-केशरीके अप्राकृत जीवन चरित्रके विविध वैशिष्ट्योंके विषयमें विशद आलोचना हुई। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें उक्त महोत्सव समितिके वर्त्तमान सभापति और आचार्य त्रिदण्डि स्वामी परिव्राजकाचार्यवर्य परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी अध्यक्षतामें बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है। समितिके उपसभापति परम पूज्य-पाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं समितिके वर्त्तमान सम्पादक परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज इस महोत्सवमें उपस्थित थे। इस उत्सवके अवसरपर समितिके अन्यान्य संन्यासी-महोदय, ब्रह्मचारी वृन्दएवं बहुतसे गृहस्थ भक्त भी उपस्थित थे। उक्त दिवस एक विराट् सभाका आयोजन किया गया। इस सभामें बहुतसे शिक्षित व्यक्तियोंने भी भाग लिया। सभामें परम पूजनीय सभा-पति महोदय एवं अन्यान्य सभी त्रिदण्डिपाद महोदयों तथा ब्रह्मचारियोंने नित्यलीला प्रविष्ट परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी अलौकिक महिमा एवं अप्राकृत व्यक्तित्वके विभिन्न पहलुओंपर हृदयस्पर्शी प्रकाश डाला। मध्याह्नमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग श्री-श्रीराधा विनोदविहारीके भोग-राग एवं आरती के पश्चात् उपस्थित अगणित श्रद्धालु सज्जनों को विचित्रव्यञ्जन युक्त सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें उक्त दिवस प्रातःकाल मंगल-आरति, श्रीगुरु-वंदना, श्रीगुर्वष्टक, श्रीगुरु-परम्परा, पञ्च-तत्त्व आदि कीर्त्तनके पश्चात् परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी अप्राकृत महिमा एवं उनके अतिमर्त्य चरित्रका गुणानुवाद किया गया। दोपहरको समितिके सेवकोंके विशेष अनुरोध एवं प्रार्थना पर जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८

श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कृपापात्रोंमें अन्यतम परम पूजनीय प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी परिव्राजक आचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिदयितमाधवमहाराज जी, परम पूजनीय प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्ति-प्रमोद पुरी महाराज, परम पूजनीय प्रपूज्य-चरण श्रीश्रीमद्भक्तिसौध आश्रम महाराज, परम पूजनीय प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद् कृष्ण-दास बाबाजी महाराज आदि पूजनीय वैष्णव गण एवं परम पूजनीय श्रीश्रीमद्भक्ति दयित माधव महाराजजीके चरणाश्रित संन्यासी महोदय एवं ब्रह्मचारीगण उपस्थित हुए। सभी गुरु-सेवकोंने पूजनीय वैष्णवों एवं गुरुजनोंकी अभ्यर्थना कर उन्हें सम्मान-पूर्वक आसन आदि प्रदान किया। श्रीश्रीगुरु गौरांग श्रीराधाविनोदबिहारीजीके भोगराग एवं मध्याह्न-आरतीके पश्चात् आयोजित सभामें परम पूजनीय प्रपूज्य चरण श्रीश्रीमद् भक्ति-प्रमोद पुरी महाराज, परम पूजनीय प्रपूज्य-चरण श्रीश्री मद् भक्तिसौध आश्रम महाराज एवं अन्तमें परम पूजनीय प्रपूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराजजीने अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी अप्राकृत महिमा एवं अतिमर्त्य गुणावलीका कीर्त्तन करते हुए उनके प्रति अपनी आंतरिक श्रद्धा प्रकट करते हुए उनके अप्रकट हो जानेसे धर्म जगतको विशेषकर श्रीगौड़ीय-वैष्णव-समाजके लिये जो महान क्षति हुई है, इसका पूरण होना असम्भव कहा एवं सभी गुरुसेवकोंको आप्राण-चेष्टा तथा काय-मनो-वाक्यसे नित्यलीलाप्रविष्ट परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्य-केशरीके अतुलनीय आदर्श, ऐकान्तिकता, अलौकिक निष्ठा, दृढ़ आचरण आदिको अपनानेका उपदेश दिया। सभाके अन्तमें सभी पूजनीय वैष्णवोंको प्रीतिपूर्वक श्रीराधाविनोदबिहारीके षड्रस पूर्ण एवं विविध व्यञ्जनयुक्त महाप्रसादका सेवन कराया गया। उपस्थित अन्यान्य श्रद्धालु सज्जनोंको भी महाप्रसाद वितरण किया गया। पूजनीय गुरुजनों एवं वैष्णवोंसे सभी मठवासी गुरुसेवकोंने आन्तरिक कृतज्ञता एवं श्रद्धा प्रकट की। शामको आयोजित सभामें श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी एवं श्रीपाद कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरु-पादपद्मके श्रीचरण-कमलोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके अलौकिक व्यक्तित्व, अप्राकृत जीवन-चरित्र, अतिमर्त्य गुणावली आदि विभिन्न विषयोंपर प्रकाश डाला।

श्रीश्रीदामोदर-व्रत श्रीअन्नकूट-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति इस वर्ष भी समितिके अधीनस्थ सभी मठोंमें चातुर्मास्य व्रत एवं उसके अन्तर्गत श्रीदामोदर-व्रत या श्रीकार्त्तिक-व्रत या श्रीउर्ज्ज-व्रतकी नियम-सेवाका अनुष्ठान हुआ। यह अनुष्ठान ५ कार्त्तिक, २२ अक्टूबर, रविवार, पूर्णिमासे आरम्भ कर ५ अग्रहायण, २१ नवम्बर, मङ्गलवार, पूर्णिमा तक पालन किया गया। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें इस अवसर पर समितिके वर्त्तमान सभापति त्रिदण्डि-

स्वामी परम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एवं समितिके उप-सभापति परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज भी उपस्थित थे। मथुरा धाममें इस व्रतका अनुष्ठान करनेके लिये बहुतसे गृहस्थ भक्त भी उपस्थित हुए थे। उक्त पूजनीय वैष्णवों की उपस्थितिसे एवं उनके प्रोत्साहनसे यह अनुष्ठान बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

प्रातःकाल परम पूज्यपाद श्रीश्रील नारायण महाराज श्रीदामोदराष्टकम्, श्रीशिक्षाष्टकम्, श्रीउपदेशामृतम् आदिका पाठ करते थे। अपराह्णमें जगद्गुरु श्रीश्रील प्रभुपादजीकी वक्तृतावली एवं अन्यान्य ग्रन्थोंका पाठ होता था। शामको सन्ध्या-आरति एवं कीर्त्तनके पश्चात् परम पूज्यपाद श्रीश्रील आचार्यदेव श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका नियमित रूपसे पाठ करते थे। प्रतिदिन श्रीगुर्वष्टक, श्रीगुरु-परम्परा, श्रीवैष्णव-वन्दना, श्रीपञ्चतत्व, श्रीदामोदराष्टकम्, श्रीमती राधिकाजीकी . महिमासूचक महाजन पदावली एवं महामन्त्रका कीर्त्तन भी नियमित रूपसे होता था। शास्त्रीय विधि-अनुसार अर्चन-पूजन, ठाकुरजीके भोग-राग, श्रीविग्रहों के शृङ्गार एवं सेवा- कार्य आदि सम्पन्न किये गये।

उक्त नियमसेवा-व्रतका अनुष्ठान मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें समितिके वर्त्तमान सम्पादक परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी अध्यक्षता एवं देख-रेखमें बहुत ही सुन्दररूपसे पालन किया गया।

उक्त व्रतके अन्तर्गत २१ कार्त्तिक, ७ नवम्बर, मङ्गलवार शुक्ला प्रतिपदाको श्रीगोवर्धन-पूजा एवं श्रीअन्नकूट महोत्सव समितिके मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े ही समारोह पूर्वक मनाया गया है। श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठ; नवद्वीपमें यह महोत्सव सभी मठवासी सेवकों के उत्साह एवं अक्लान्त परिश्रमसे बड़े ही धूमधाम पूर्वक मनाया गया है। इस महोत्सव में यहाँ हजारों सज्जनोंने श्रीश्रीगौरांग राधाविनोदबिहारीजीको अर्पित छप्पन व्यंजन एवं षड्रसयुक्त सुस्वादु महाप्रसादका आकण्ठ सेवन किया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें पूर्वाह्णमें श्रीगिरिराज गोवर्धन एवं श्रीगोवर्धनधारी गोपाल तथा श्रीराधाविनोदबिहारीजीका विधिवत् अर्चन-पूजन एवं अभिषेक आदि सम्पन्न किये गये। दोपहरको श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीको असंख्य व्यञ्जनयुक्त सुस्वादु भोज्य सामग्री निवेदन की गई। इसी अवसरमें परम पूज्यपाद श्रीश्रील आचार्यदेव एवं परम पूज्यपाद श्रीश्रील नारायण महाराज जीने श्रीअन्नकूट-प्रसङ्ग एवं श्रीगोवर्धन-पूजा की महत्ताका शास्त्रीय प्रमाण देते हुए प्रतिपादन किया एवं श्रीअन्नकूट महोत्सव मनाने की परमावश्यकता पर जोर दिया। मध्याह्न भोग-आरति एवं हरि-संकीर्त्तनके पश्चात् निमन्त्रित सभी वैष्णवगण एवं उपस्थित लगभग ३००–४०० सज्जनोंने विचित्र सुस्वादु महाप्रसादका सेवन किया। शामको परम पूज्यपाद श्रीश्रील आचार्यदेवने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्धसे श्रीगिरिराज गोवर्धनकी महिमा, भगवान श्रीकृष्णकी इन्द्र-यज्ञ भङ्ग

लीला, गोवर्धन-धारण आदि प्रसङ्गोंका पाठ किया। नाना प्रकारकी असुविधाएँ उपस्थित होने पर भी इस उत्सवका अनुष्ठान आशातीत रूपसे बड़े सुचारु ढङ्गसे सम्पन्न हुआ है।

जगद्गुरु श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका विरह-महोत्सव

श्रीश्रीदामोदर व्रतके अन्तर्गत १ अग्रहायण, १७ नवम्बर, शुक्रवारको श्रीउत्थान एकादशी तिथिमें जगद्गुरु परमाराध्यतम श्रीश्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज का तिरोभाव-महोत्सव समितिके सभी मठों में बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है।

उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें प्रातःकाल मङ्गलारति एवं कीर्त्तन आदिके पश्चात् परम पूज्यपाद श्रीश्रील आचार्यदेवने परमाराध्यतम श्रीश्रील बाबाजी महाराजके अप्राकृत जीवन-चरित्र, अपूर्व वैराग्य, अतिमर्त्य गुणावली, हरि भजनका श्रेष्ठतम आदर्श आदि विषयोंपर हृदयग्राही प्रकाश डाला। शामको आयोजित विशेष सभामें विभिन्न वक्ताओं एवं अन्तमें परम पूजनीय श्रीश्रीलआचार्यदेवने परमाराध्यतम श्रीश्रील बाबाजी महाराजकी प्रकट-लीलाकी विभिन्न पहलुओंपर मार्मिक प्रकाश डाला एवं उनके प्रति आन्तरिक श्रद्धा एवं प्रीति ज्ञापन किया। महामन्त्र कीर्त्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

—निजस्व संवाददाता

श्रीचैतन्य शिक्षामृत

(मधुर भक्ति-रस)

(गतांक, पृष्ठ १२० से आगे)

श्रीमती राधा एवं श्रीमती चन्द्रावली—इन दोनोंमें श्रीमती राधा साक्षात् महाभाव-स्वरूपा हैं। अतएव वे सब गुणों द्वारा परिपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठा हैं। तापनी-श्रुति एवं ऋक्-परिशिष्टमें राधा-माधवकी उज्ज्वलता वर्णन की गई है। राधिकाजी ह्लादिनी शक्तिकी सारभावरूपा हैं। राधिकाजी सुष्ठुकान्त-स्वरूपा हैं। वे सोलह प्रकारके शृङ्गारसे देदीप्यमान एवं बारह प्रकारके अलंकारोंसे शोभिता हैं। उनके स्वरूपकी शोभा ऐसी महिमायुक्त है कि शृङ्गार एवं अलंकार उसके सामने अत्यन्त फीके पड़ जाते हैं। सुकुंचित केश, चञ्चल मुखकमल, दीर्घ नेत्र, वक्षस्थलमें अपूर्व स्तनद्वय, मध्यदेश क्षीण, दोनों कन्धे शोभित, हाथोंमें नखरत्न विराजमान हैं। तीनों जगतमें ऐसा रूपोत्सव नहीं होनेके

कारण उनको सुष्ठुकान्तस्वरूपा कहा जाता है। स्नान,नासाग्रमें मणिकी उज्ज्वलता, नीले वस्त्र, कमरमें नीवि, मस्तकमें वेणी, कानोंमें उत्तंश (कर्णभूषण), अंगोंमें चन्दनलेपन, केशों में पुष्प-विन्यास, गलेमें माला, हाथमें पद्म, मुखमें ताम्बूल, चिबुक (ठोड़ी) में कस्तूरी बिन्दु, आँखोंमें काजल, चित्रित कपोल, चरणोंमें अलक्तक-राग, ललाट-फलकमें तिलक —ये सोलह शृङ्गार अर्थात् देह-शोभा है। चूड़ामें अपूर्व मणि, कानोंमें स्वर्ण कुण्डल, नितम्बमें कांची, गलेमें सुवर्णपदक, कानोंके ऊपरके भागमें किये गये छिद्रमें स्वर्ण-शलाका, हाथोंमें वलय, कण्ठमें कण्ठभूषण, उँगलियोंमें अगूँठियाँ, गलेमें ताराहार, भुजोंमें अंगद, चरणोंमें रत्ननूपुर एवं पदांगुलियोंमें अगूँठियां —इस प्रकार बारह आभरण श्रीमती राधिकाजीके अंगोंमें शोभा पाते हैं।

वृन्दावनेश्वरी कृष्णकी तरह असंख्य गुणयुक्ता हैं। उन गुणोंमें पच्चीस प्रधान हैं—(१) वे मधुरा अर्थात् चारुदर्शना हैं। (२) नववया अर्थात् किशोर वयस विशिष्टा हैं। (३) चलापांगी अर्थात् चंचल अपांग (दृष्टि) युक्ता हैं। (४) उज्ज्वल स्मिता अर्थात् आनन्दमय हास्य युक्ता हैं। (५) चारु सौभाग्यकी रेखा युक्ता अर्थात् उनके पादादिमें चन्द्ररेखा है। (६) गन्ध द्वारा माधव (कृष्ण) को उन्मादित करती हैं। (७) संगीत विस्तार में अभिज्ञा हैं। (८ रम्यवचन युक्ता हैं। (९) नर्म-पण्डिता (हास-परिहासमें कुशल) हैं। (१०) विनीता। (११) करुणासे पूर्ण। (१२) विदग्धा, चतुरा। (१३) पाटवान्विता, पटु। (१४) लज्जाशीला। (१५) सुमर्यादा अर्थात् साधुमार्गसे अविचलिता हैं। (१६) धैर्य-शालिनी। (१७) गांभीर्यशालिनी। (१८) सुविलासा। (१९) महाभाव परमोत्कर्ष-तर्षिणी। (२०) गोकुल-प्रेम वसति। (२१) जगद्श्रेणीलसद्यशा, जिनका यश अनन्त जगतोंमें व्याप्त है। (२२) गुर्वर्पित गुरुस्नेहा, गुरुजनोंके अत्यन्त स्नेहास्पद हैं। (२३) सखी-गणोंके प्रणयके अधीना हैं। (२४) कृष्ण प्रियावली मुख्या। (२५) सन्ताश्रवकेशवा, केशव सर्वदा उनकी आज्ञाके अधीन हैं।

वराह-संहिता, ज्योतिस्शास्त्र, काशीखण्ड, मत्स्य-पुराण एवं गरुड़ पुराणमें सौभाग्य रेखायें इस प्रकार वर्णित हैं—(१) बाएँ चरण के अँगूठेके मूलमें जव-रेखा। (२ उसके नीचे चक्र। (३) मध्यमाके तलमें कमल। ४) कमलके नीचे ध्वजा। (५) पताका। (६) मध्यमाके दक्षिणसे आगत मध्यचरणके बीचमें उर्द्ध्वरेखा। (७) कनिष्ठ अँगुलीके नीचे अंकुश। फिर (१) दाएँ चरणके अगूँठेके मूल में शङ्ख। (२) एक ओर मत्स्य। (३) कनिष्ठ अँगुलीके नीचे वेदी। (४) मत्स्यके ऊपर रथ। (५) शैल या पर्वत। (६) कुण्डल। (७) शक्तिचिह्न। बाँई हथेलीमें (१) तर्जनी-मध्यमा अँगुलियोंकी सन्धिसे कनिष्ठ अँगुलीके नीचे तक परमायुरेखा। (२) उसके नीचे हाथसे प्रारम्भ कर तर्जनी एवं अँगूठेके मध्यदेशगत दूसरी रेखा। (३) अँगूठेके नीचे मनिबन्धसे उठकर वक्रगतिसे मध्यरेखामें मिलित होकर तर्जनी-अँगूठेके मध्यभागगत तीसरी रेखा। (४) अँगुलियोंके अग्रभागमें नन्द्यावर्त्तरूप पाँच चक्राकार चिह्न। सभी मिलकर ८ हुए। (९) अनामिकाके नीचे कुञ्जर (हाथी)।

(१०)परमायु रेखाके नीचे वाजी(घोड़ा) ।(११) मध्यरेखाके नीचे वृष (साँड) । (१२) कनिष्ठा उँगलीके नीचे अंकुश । (१३) व्यजन (पंखा) । (१४) श्रीवृक्ष । (१५) यूप (विजय स्तम्भ) । (१६) बाण । (१७) तोमर । (१८) माला । दक्षिण (दाईं हथेलीमें बाँईं हथेलीकी तरह परमायु आदिकी तीन रेखायें। उँगुलियोंके अग्रभागमें पाँच शङ्ख । (९) तर्जनीके नीचे चामर । (१०) कनिष्ठा उँगलीके नीचे अंकुश । (११) प्रासाद । (१२) दुन्दुभि । (१३) वज्र । (१४) शकटयुक्त । (१५) कोदंड। (१६) असि (तलवार) । (१७) भृङ्गार । बाँयें चरणमें सात । दक्षिण चरणमें आठ । बाँए हाथमें अठारह । दक्षिण हाथमें सत्तरह । एक साथ पचास चिह्न सौभाग्य रेखायें ।

जीवोंमें बिन्दु-बिन्दु रूपसे ये सभी गुण हैं । देवता आदियोंमें ये सभी गुण कुछ-कुछ अधिक परिणाममें हैं । श्रीमती राधिकामें ये सभी गुण ही पूर्ण रूपसे वर्त्तमान हैं, उनके समस्त गुण ही अप्राकृत हैं । गौरी आदियोंमें इन सभी गुणोंकी शुद्धता और पूर्णता नहीं है । श्रीमती राधिकाजीको समस्त गुणोंकी चमत्कारिताकी पराकाष्ठा है ।

श्रीराधाजीका यूथ ही सर्वोत्तम है । उस यूथमें जो सभी ललनायें हैं, वे सब सद्गुण-भूषिता हैं, उनके विलास-विभ्रम माधवको सर्वदा आकर्षण करते हैं । श्रीराधाजीकी सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी एवं परमप्रेष्ठ सखी—ये पाँच प्रकारकी सखियाँ हैं । कुसुमिका, वृन्दा, धनिष्ठा आदि सखियों में गिनी गई हैं । कस्तूरी, मणि-मञ्जरी आदि नित्यसखी । शशी मुखी, वासन्त्री, लासिका आदि प्राण सखी—ये सभी प्रायः ही वृन्दा-वनेश्वरीकी स्वरूपता-प्राप्त हैं । करंगाक्षी, सुमध्या, मदलसा, कमला, माधुरी, मंजुकेशी, कन्दर्पसुन्दरी, माधवी, मालती, कामलता, शशिकला आदि प्रिय सखी । ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दु रेखा, रंग देवी एवं सुदेवी—ये आठ सखियाँ सभी सखियोंमें प्रधान-सखियाँ हैं । ये सभी परम श्रेष्ठ सखियाँ कहलाती हैं । ये राधाकृष्णके प्रेमकी पराकाष्ठाके कारण स्थल विशेषमें कभी कृष्णके प्रति एवं कभी राधाके प्रति अधिक प्रेम प्रदर्शन करती हैं । प्रत्येक यूथमें जो गौण विभाग है, उसका नाम गण है । बज-लीलामें अत्यन्त क्षुद्र मायोपाधिक विवाह-विधिका स्थान नहीं है । वे ही गोलोकबिहारी श्रीकृष्ण जब अपने परम-पारकीय रसको प्रपञ्चमें गोकुलके साथ ले आते हैं तब गोकुल ललनाओंका वह परकीय रस निंदाका स्थान नहीं पाता । गोकुल-ललनाओंके लिये कृष्णमें केवल नन्दनन्दनत्वकी स्फूर्त्ति होती है । उसी निष्ठा द्वारा जिन सभी भाव-मुद्राओंका उदय होता है, उन्हें अभक्त तार्किक-व्यक्तिके लिए तो दूर रहें, वैध-मार्गके भक्तोंके लिये भी दुर्गम हैं । गोपियोंकी दर्शन करनेसे कृष्णकी चतुर्भुजता लुप्त होती है ।

नायिकाएँ तीन प्रकारकी है—(१) स्व-कीया, (२) परकीया और (३) सामान्या । चिद्रसकी स्वकीया-परकीया नारियोंकी बात कही गई है। जड़-अलंकारिक पण्डित लोग वेश्याओंको सामान्य नायिका कहते हैं, ऐसे व्यक्ति केवल अर्थलोभी हैं । वे लोग गुणहीन नायकसे द्वेष एवं गुणवान् नायकके प्रति

अनुराग नहीं करते। उनका शृङ्गार केवल शृङ्गाराभास मात्र है। माधुरी सैरन्ध्री कुब्जा साधारणी होने पर भी किसी प्रकार की भावयोग्यताके कारण उसे परकीया साधारणी कहा जाता है। कृष्णरूप दर्शन कर कृष्णांगमें चन्दन दानकी स्पृहा ही उसका अप्राकृत प्रियत्व भाव है। उसकी रति महिषियोंकी रतिकी अपेक्षा न्यूनजातीया है। स्वकीया एवं पारकीया दोनों प्रकारकी नायिकाएँ मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा भेदसे तीन प्रकारकी हैं। दूसरे-दूसरे प्रकार-भेद क्रमसे कृष्णकी नायिकाएँ सभी पन्द्रह प्रकार की हैं।

नायिकाओंकी अवस्था-भेदसे वे आठ प्रकारकी हैं अर्थात् अभिसारिका, वासक-सज्जा, उत्कण्ठिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्तृका एवं स्वाधीन भर्तृका। पहले कहे गये पन्द्रह प्रकारकी कृष्ण-नायिकाओंकी ही ये आठ प्रकारकी अवस्थाएँ हैं।

जिस स्थलमें कृष्ण नायिकाके प्रेमके वशीभूत होकर क्षणकाल भी त्याग करनेमें समर्थ नहीं होते, तब स्वाधीन भर्तृका को माधवी कहा जाता है। आठ नायिकाओं में स्वाधीन-भर्तृका, वासकसज्जा एवं अभिसारिका—ये तीनों नायिकाएँ प्रसन्न चित्त होकर अलंकारादि धारण करती हैं। खण्डिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, प्रोषित-भर्तृका एवं कलहान्तरिता—ये पाँच प्रकार की नायिकाएँ भूषणरहित होकर बाएँ कपोलमें हाथ रखकर खेद एवं चिन्तासे सन्तप्त होती हैं। कृष्ण प्रेममें सन्तापादि चिन्मय परमानन्दकी विचित्रताएँ हैं। प्रेम-तारतम्य क्रमसे नायिकाएँ उत्तमा, मध्यमा एवं कनिष्ठादि भेदसे तीन प्रकारकी हैं। जिस नायिकाका कृष्णके प्रति जिस परिमाण में भाव है, कृष्णका भी उस नायिकाके प्रति उसी परिमाणमें भाव है। उत्तम नायिका कृष्णको क्षणकाल सुख प्रदान करनेके लिये सभी कर्म परित्याग करती हैं। कृष्णके क्लेश के संवादको सुनकर उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। मध्यमाका चित्त नायककी क्लेश-वार्तासे खिन्न मात्र होता है। नायकके साथ मिलनकी बाधाकी जो आशङ्का करती हैं, वे कनिष्ठा हैं। एकत्र करने पर नायिकाओं का संख्या तीन सौ साठ होती है। पहले जो पन्द्रह प्रकारका भेद बतलाया गया है, उसे आठ गुणा करने पर एक सौ बीस होता है, उसे अन्तमें कहे गये तीन भेदसे गुणा करने पर तीन सौ साठ होता है। कृष्णकी नायिकाओके ये सभी भजन-भाव हैं।

यूथेश्वरियोंके सुहृदादि व्यवहार अर्थात् स्वपक्ष, विपक्ष एवं तटस्थ भेद है।

कृष्ण-दर्शनकी तृष्णासे युक्त नायिकाओं की सहायकारिणी दूतियाँ स्वयंदूती एवं आप्तदूती भेदसे दो प्रकारकी हैं। अनुराग-मोहिता नायिका नायकके प्रति स्वयं जो भाव प्रकाश करती हैं, वही स्वयंदूती है। अभियोग कायिक, वाचिक एवं चाक्षुष भेदसे तीन प्रकारका है। व्यंग ही वाचिका अभियोग है। वह शब्द व्यंग एवं अर्थ व्यंग भेदसे दो प्रकारका है। कृष्णको साक्षात् एवं व्यपदेश द्वारा व्यंग दो प्रकारसे कार्य करता है। स्वार्थ एवं परार्थ भेदसे भिक्षा

या प्रार्थना दो प्रकारकी है। इसमें अपदेश एवं व्यपदेश है। विश्वता, स्नेहवती एवं वाग्मिनी दूतियाँ व्रजसुन्दरियोंकी आप्त-दूतियाँ हैं। अमितार्था, निसृष्टार्था एवं पत्रहारी भेद से दूतियाँ तीन प्रकारकी होती हैं। शिल्प-कारिणी, दैवज्ञा, लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी एवं सखी इत्यादि भी दूतियोंमें परिगणित हैं। चित्रकारिणी चित्र द्वारा, दैवज्ञा दूती राशिफलादि कहकर मिलन कराती हैं। पौर्णमासीकी तरह तापसादि वेश धारिणी लिंगिनी दूतियाँ हैं। लवङ्ग-मञ्जरी भानुमती आदि कुछ सखियाँ परिचारिकायें हैं। दूतियाँ राधिकाजीकी धात्रेयी दूती होती हैं। वनदेवी वृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सखियाँ शब्दव्यंग एवं अर्थ व्यंग द्वारा दूती का कार्य करती हैं। उसमें शब्दमूलक एवं अर्थमूलक व्यपदेश, प्रशंसा-उपक्षेपादि सभी प्रकारके अभियोग हैं। दौत्य-कार्यमें नियुक्त होकर सखियों द्वारा निर्जनमें कृष्णसे मिलन करने पर कृष्ण उनके संगमकी प्रार्थना करते हैं। किन्तु सखियाँ उसके लिये सम्मत नहीं होतीं। सखियोंकी सोलह प्रकारकी क्रियाएँ हैं—

(१) नायक-नायिकाके परस्परके निकट परस्परका गुण-वर्णन। (२) परस्परके प्रति आसक्ति बढ़ाना। (३) परस्परका अभिसार कराना। (४) कृष्णके निकट सखी-समर्पण। (५) परिहास। (६) आश्वास प्रदान करना। (७) नेपथ्य अर्थात् वेश-रचना। (८) परस्पर का मनोभाव उद्घाटन करना। (९) दोष-छिद्र आदिका गोपन। (१०) पति आदियोंकी वञ्चना। (११) शिक्षा प्रदान। उचित कालमें नायक-नायिकाका मिलन कराना। (१२) चामर-व्यजनादि द्वारा सेवा करना। (१३) नायकका स्थल विशेषमें तिरस्कार। (१४) स्थल विशेषमें नायिकाका तिरस्कार। (१५) संवाद प्रेरण करना। (१६) नायिकाकी प्राण रक्षा। सभी विषयोंमें प्रयत्न।

जो सभी सखियाँ राधा एवं कृष्णमें समान परिमाणमें प्रेम रखकर भी अपने आपको राधिकाके निजजन कहकर अभिमान करती हैं वे सखियाँ सर्वश्रेष्ठा हैं। उन्हें प्रियसखी एवं परमप्रेष्ठ सखी कहा जा सकता है। स्वपक्ष, सुहृत्पक्ष, तटस्थ एवं विपक्ष भेदसे सखियाँ चार प्रकारकी हैं। रस पुष्टि करना ही इस प्रकारके भेदका तात्पर्य है। प्रतिपक्ष कार्यमें जो दर्प, मद एवं ईर्ष्या आदि भाव है, वह केवल रसका पोषक भाव मात्र है। वास्तवमें सभी ही अखण्ड प्रेम है। इन विषयों जो विस्तार वर्णन है, वह श्रीउज्ज्वल-नीलमणि या श्रीजैव-धर्ममें अधिकारी पाठक लोग देखकर हृदयंगम करेंगे। अनधिकारीके अमंगलके भयसे उन बातोंकी यहाँ आलोचना न करेंगे।

मधुर रसमें कृष्ण-एवं कृष्णवल्लभाओंके गुण, नाम, चरित, मण्डन, सम्बन्धित एवं तटस्थ विषय सभी ही उद्दीपन हैं। गुण सभी मानस, वाचिक एवं कायिक हैं।

इस रसमें अनुभाव, अलंकार, उद्भास्वर भी वाचिक, कायिक एवं मानस भेदसे तीन प्रकारके हैं। अलंकार भाव, हाव भेदसे बीस प्रकारके हैं। हृदयके भाव शरीरमें उद्भासित होने पर उसे उद्भास्वर कहते हैं। वाचिक अनुभाव आलाप, विलाप भेदसे बारह प्रकार का है। (क्रमशः)